प्राचीन भारत में वर्ण–व्यवस्था का इतिहास

Dr. Rakesh Kumar
Department of History

शोध–आलेख सार– भारत में वर्ण व्यवस्था की शुरूआत वैदिक युग में मानी जाती है। ऋग्वेद के अध्ययन से पता चलता है कि जिस समय आर्य सप्तसिन्धु में निवास करते थे तो उन्हें अनार्यों से युद्ध करना पड़ा और इस युद्ध में आर्यों की विजय हुई। आर्यों ने अनार्यों को दास बनाया तथा उनको अपने समाज का अंग भी बना लिया। इस तरह आर्यों व अनार्यों में वर्ण भेद शुरू हो गया। इस वर्ण व्यवस्था में उन्होंने अनार्यों या दस्युओं को भी जगह दी। ऋग्वेद में चार वर्णों का उल्लेख है और समाज को पुरूष का रूपक दिया गया है। यह चारों वर्ण क्रमशः मुख, भुजा, जंघा व पैर से सम्बन्धित हैं। पुरूष सूक्त में भी चारों वर्णों का जिक्र है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार जिस पुरूष सूक्त में चारों वर्णों का उल्लेख है वह वैदिक युग में अपने विकसित रूप में विद्यमान थे। प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था के इतिहास का अध्ययन किया गया है। **मूलशब्द**– प्राचीन भारत, वैदिक युग, आर्य, अनार्य, पुरूष सूक्त, ऋग्वेद, वर्ण–व्यवस्था।

भूमिका– प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि वर्ण व्यवस्था वैदिक युग में ही अपना विकसित रूप ले चुकी थी। ऋग्वेद में ब्राह्मण शब्द को कई बार ब्रह्मन के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इसमें यह भी जिक्र है कि राजा ब्रह्मण को उच्च स्थान देकर उसका आदर करता था और शान्ति व आनन्द के साथ रहता था। उसे कभी भी धन–धान्य की कमी नहीं होती थी जो राजा ब्रह्मण की सहायता करता था उसकी रक्षा देवता करते थे।[1] यहाँ ब्रह्मण शब्द का अर्थ ब्राह्मण से है। ऋग्वेद में ब्राह्मणों के मैत्री भाव से यज्ञ करने का भी उल्लेख है। इस वेद में क्षत्रिय शब्द का भी बार–बार उल्लेख है। इस शब्द के लिए ऋग्वेद में राजन्य शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद में वैश्य के लिए विश् शब्द का भी अनेक बार प्रयोग हुआ है। तैत्तरीय संहिता में भी वर्ण व्यवस्था का उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि प्रजापति ने वैश्य व गाय को एक साथ उत्पन्न किया।[2] शूद्र शब्द का प्रयोग एक बार ही किया गया है। पुरूष सूक्त के अन्दर वर्ण व्यवस्था केवल अर्थशास्त्र के कार्य विभाजन

[1] ऋग्वेद, 8–9
[2] तैत्तरीय संहिता, 4–6.

सिद्धान्त पर आधारित थी। इसमें कहा गया है कि जिस तरह शरीर के सभी अंग एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं उसी तरह यह वर्ण व्यवस्था भी जीवित समाज का लक्षण है।

वास्तव में प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था को उपयोगी माना जाता था और राजा इस व्यवस्था के संचालन के लिए उत्तरदायी था। उसके द्वारा सभी वर्णों को अपने–अपने कर्त्तव्य करने की प्रेरणा दी जाती थी। वैदिक काल से महाभारत काल तक वर्ण व्यवस्था अपने पूर्ण रूप में समाज में लागू थी। पुरूष सूक्त के अध्ययन से पता चलता है कि शूद्र भी किसी अन्य जाति के नहीं थे और ये चारों वर्ण आर्य थे। वेदों में समानता के व्यवहार का भी पता चलता है। इसलिए सेवा कार्य के कारण शूद्रों को उस समय निम्न स्थान प्राप्त नहीं था बल्कि बराबर का दर्जा प्राप्त था। समाज के विकास के लिए ये चारों वर्ण उपयोगी थे। किसी एक के बिना बाकी तीनों वर्ण अधूरे माने जाते थे। यद्यपि शूद्रों को अध्ययन, अध्यापन का कार्य नहीं दिया जाता था फिर भी उनमें से कुछ मन्त्र दृष्टा ऋषि भी थे। ऐतरेय ब्राह्मण व कौशेतकी ब्राह्मण में कवष ऐलूष का वर्णन प्राप्त होता है जो एक मन्त्र दृष्टा ऋषि थे।

ऋग्वेद के समय से ही वर्ण व्यवस्था कुछ विशेषताओं से मण्डित हो चुकी थी तथा रामायण काल में जो कि वैदिक काल के बाद आता है यह और अधिक विकसित हो गई। रामायण काल में वर्ण व्यवस्था को स्थायित्व मिला और अब यह जन्म पर आधारित होने लगी तथा व्यवसायिक वर्ण विभाजन के स्थान पर पैतृक वर्ण विभाजन शुरू हो गया। इस तरह रामायण काल में वर्ण विभाजन अपरिवर्तशील बन गया तथा ब्राह्मण व क्षत्रिय दोनों को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। वाल्मिकी रामायण में भी ब्राह्मण धर्म की भांति क्षत्रिय धर्म की मर्यादा का उल्लेख हुआ है। राम को क्षत्रिय धर्म का उदाहरण माना जाता है। इस समय समाज में वैश्यों का भी विशेष महत्व था। यहाँ सामाजिक संगठन की रूपरेखा में शूद्रों पर कुछ प्रतिबंध लगाए गए थे।[3] इस तरह रामायण में चारों वर्णों की पूर्णांग व्यवस्था का रूप मिलता है। इसमें ब्राह्मण वर्ण के प्रति क्षत्रिय वर्ण अपनी श्रद्धा अर्पित कर उसे श्रेष्ठ मानते थे।

चतुर्वर्ण उत्पत्ति – चार वर्णों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में महाभारत में कई जगह उल्लेख आता है जिसके अनुसार एक स्थान पर रंगभेद से वर्ण भेद बताया गया है। इसमें ब्राह्मण का रंग सफेद, क्षत्रियों का लाल, वैश्यों का पीला तथा शूद्रों का काला रंग का जिक्र आता है। पूर्वकाल में यह समस्त

[3] वाल्मिकी रामायण, 76वां अध्याय.

संसार ब्राह्मण ही था जो बाद में विभिन्न कर्मों के कारण चार वर्णों मे बंट गया। जिन लोगों ने ब्राह्मण धर्म का परित्याग किया और जो विषय भोग के प्रेमी, तीक्ष्ण स्वभाव वाले क्रोधी और साहसी हो गए वे क्षत्रिय कहलाऐ। जिन्होंने गायों और कृषि कार्य से अपनी आजीविका चलाना शुरू किया वे वैश्य वर्ण में आ गए। जो सदाचार से भ्रष्ट होकर हिंसक प्रवृति की ओर चले गए उन्हें शूद्र वर्ण प्राप्त हुआ। शान्ति पर्व में लिखा है कि अपने विभिन्न कर्मों के कारण ब्राह्मणत्व से अलग होकर वे सभी ब्राह्मण, अन्यानय वर्ण के हो गए किन्तु उनके लिए नित्य धर्मानुष्ठान व यज्ञ क्रिया का निषेध नहीं किया गया था।[4] इससे पता चलता है कि ये चारों वर्ण आर्य ही थे। महाभारत काल में वर्ण व्यवस्था केवल जन्म पर ही आधारित नहीं थी बल्कि जन्म व गुण दोनों पर आधारित थी। इस समय ऐसी मान्यता थी कि ब्रह्म से उत्पन्न सभी ब्राह्मण हैं। ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, नाभि से वैश्य, तथा चरणों से शूद्र की उत्पति हुई है। अतः सभी समान रूप से आदरणीय हैं।

ब्राह्मण वर्ण– चूंकि ब्राह्मणकाल में ब्राह्मण वर्ण को श्रेष्ठ दर्जा प्राप्त था और यह दर्जा वैदिक काल से ही चला आ रहा था। ब्राह्मण को समस्त प्राणियों का गुरू माना जाता था और उसकी हत्या सबसे बड़ा पाप समझी जाती थी। इस बारे में एक कहावत प्रचलित थी कि ब्राह्मण को क्रोध आने पर वह अपराधी को जिस प्रकार जलाकर भस्म कर देता है उस कार्य को अग्नि व सूर्य भी नहीं कर सकते। अतः राजा लोग भी ब्राह्मणों का अपमान करने से डरते थे। राजा परीक्षित द्वारा गौरमुख ब्राह्मण का बड़ा सत्कार किया गया था।[5] वैसे तो क्षत्रिय धर्म के अनुसार ब्राह्मण का वध अमान्य था परन्तु युद्ध के लिए तैयार ब्राह्मण का वध करना शास्त्रानुकूल था। ऐसी मान्यता थी कि धैर्यवान व जितेन्द्रीय ब्राह्मण जिनके सहायक हों उन्हें कौन जीत सकता है। महाभारत में कई स्थलों पर ब्राह्मण के नित्यकर्मों का भी जिक्र हुआ है। ब्राह्मण का मुख्य कार्य यज्ञ कराना, वेद पढाना तथा दान–दक्षिणा ग्रहण करके जीवन निर्वाह करते हुए जगत पर अनुग्रह करना बताया गया है। ब्राह्मण का मुख्य धर्म इन्द्रिय संयम व स्वाध्याय माना जाता था। इस काल में चारों आश्रमों के पालन की व्यवस्था केवल ब्राह्मण वर्ण के लिए थी। अतः ब्राह्मण हमेशा पवित्र रहते थे। जो ब्राह्मण मांसाहार करता था तथा ऋतुकाल आए बिना पत्नी से समागम करता था, उसे पतित माना जाता था। ऐसी मान्यता थी कि ब्राह्मण धर्म का पालन सबसे बड़ा कर्म है।

[4] शान्तिपर्व, 188, 11–15.
[5] आदिपर्व, 42–16.

क्षत्रिय वर्ण– महाभारत में इस वर्ण के बारे में अत्याधिक ज्ञान उपलब्ध है। कार्य विभाजन की दृष्टि से ऋग्वेद में क्षत्रिय की उत्पति पुरूष की भुजाओं से बताई है। उस समय क्षत्रिय वर्ग द्वारा ब्राह्मणों का बड़ा आदर किया जाता था और राजा लोग केवल कुलीन क्षत्रिय से ही युद्ध करते थे। जब कर्ण ने रंगभूमि में प्रवेश करके अर्जुन से युद्ध करना चाहा तो सूत पुत्र होने के कारण उन्हें रोक दिया गया, जिसे बाद में दुर्योधन ने अंग देश का राजा बनाकर सम्मानित किया। इसके बाद कर्ण राजकुमारों के साथ युद्ध करने का पात्र बन गया। इससे पता चलता है कि महाभारत काल में ऊँच–नीच की भावना क्षत्रिय वर्ण में भी आ चुकी थी। सम्मान की दृष्टि से समाज में क्षत्रिय दूसरे स्थान पर था। युधिष्टर भी वार्णावर्त पहुंचकर सबसे पहले ब्राह्मणों के घर गए और तत्पश्चात क्षत्रियों, वैश्यों व शूद्रों के पास गए। इस समय ऐसी मान्यता थी कि राजा के द्वारा सुरक्षित हुई जिस धर्म का अनुष्ठान करती है उसका चौथा भाग उसे मिल जाता था। राजा की दण्ड नीति यदि स्वधर्म के अनुसार प्रयुक्त हुई तो वह चारों वर्ण को नियंत्रण में रखती और अधर्म से निवृत रहती थी। क्षत्रिय लोगों की दृष्टि से युद्ध शस्त्र यज्ञ था। किसी कारण से यदि कोई ब्राह्मण क्षत्रिय धर्म स्वीकार करता था तो वह उसी का पालन करता था। क्षत्रियों का यह परम कर्त्तव्य था कि वे श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को संतुष्ट रखें।[6] वास्तव में क्षत्रिय लोग न्यायपूर्ण युद्ध करते थे। वे युद्ध में अत्यंत कुपित होने पर भी अपनी प्रतिज्ञा नहीं भूलते थे। अर्जुन ने हमेशा भीमसेन की इस प्रतिज्ञा की रक्षा की कि मैं धर्तराष्ट्र के समस्त पुत्रों का वध करूंगा।

क्षत्रिय लोगों में यह मान्यता थी कि क्षत्रिय धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। प्रजापालन तथा दस्यु दमन क्षत्रियों का ही धर्म था। क्षत्रिय लोग मानव समाज की रक्षा करते थे और इसे कल्याणकारी मानकर इसके पालन के लिए तत्पर रहते थे। यह धर्म अर्थ की प्राप्ति करवाने के साथ–साथ उतम नीति का भी ज्ञान करवाता था। राजा का परम कर्त्तव्य था कि वह अपने राज्य के कल्याण के लिए सभी वर्ण के लोगों को धर्मपालन का पाठ पढाए। क्षत्रिय के लिए भिक्षावृति सर्वथा निषेध थी। क्षत्रिय वर्ग स्वभाव से ही कष्ट सहिष्णु व धीर–वीर होता था।

वैश्य वर्ण– इस वर्ण की उत्पत्ति पुरूष की जंघा से बताई गई है। वर्णों की क्रमिक अवस्था में इसे तीसरा स्थान प्राप्त है। जिस तरह शरीर की जंघा पर समस्त भार होता है उसी तरह वैश्य पर समाज

[6] द्रोण पर्व, 151–38.

के भरण–पोषण का भार डाला गया। वैश्य का कर्म कृषि, पशु पालन और धर्म अनुसार दान देना है।[7] चारों वर्णों के गुण के अनुसार वैश्य का विशेष गुण व्यापार कुशलता माना जाता था। वैश्य को भी ब्राह्मण के प्रथम तीन कर्मों– दान, यज्ञ, व अध्ययन का अधिकार था। महाभारत काल में पशु पालन को वैश्यों का प्रमुख कर्म बताया गया है। जो वैश्य इस कार्य को छोड़कर अन्य कार्य करता था उसे अधर्म समझा जाता था।[8] अपने वर्ण धर्म का उचित पालन करके वैश्य प्रौढावस्था में राजा की आज्ञा से वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण कर सकता था। वैश्य का यह कर्त्तव्य था कि वह धनोपार्जन का कार्य करे और वैश्य धर्म के अनुसार दान भी दे। वैश्यों के लिए ब्याज लेना, कृषि, पशु पालन और व्यापार महान कर्म माने जाते थे।

शूद्र वर्ण– ऋग्वेद में केवल तीन वर्णों का ही उल्लेख है, परन्तु पुरूष सूक्त में चौथे वर्ण के रूप में शूद्र का उल्लेख है। शूद्र की उत्पति ब्रह्म के चरणों से मानी गई है। ऐसी मान्यता उस समय प्रचलित थी कि जैसे गंगा भारतीय समाज की सेवा करने वाली तथा सबको पवित्र करने वाली है ऐसी ही स्थिति शूद्र वर्ण की थी, परन्तु महाभारत काल में शूद्र वर्ण की स्थिति बदल गई। शूद्र वर्ण का व्यक्ति योग्य होने पर भी राजकुमारों के साथ युद्ध नहीं कर सकता था। कर्ण का पालन पोषण सूत वंश में होने के कारण उसे रंगभूमि से युद्ध करने से रोक दिया गया था। राजसूय यज्ञ में भी शूद्रों को वेदी के पास जाने की मनाही थी। उनके लिए वेदों का अध्ययन निषेध था तथा वे वेद की ऋचाएं भी नहीं सुन सकते थे। उनका कर्त्तव्य केवल तीनों वर्णों की सेवा करना था।[9]

चूंकि वैदिक युग में इस वर्ण के साथ समानता का व्यवहार किया जाता था और धर्म के अतिरिक्त उन्हें राजनीति तथा दण्डनीति में अच्छा स्थान प्राप्त था। दण्डनीति के अनुसार ब्राह्मण को वाणी द्वारा दण्डित करने का विधान था परन्तु शूद्र के दण्डविधान में निर्दण्ड शब्द का प्रयोग किया गया है। शूद्रों को वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश की मनाही थी। केवल विशेष परिस्थितियों में ही उन्हें इस आश्रम में प्रवेश प्राप्त हो सकता था। शूद्रों के लिए तीनों वर्णों की सेवा करना ही शास्त्र युक्त धर्म था। वह जिन–जिन की सेवा करता था, वे ही उसके भरण पोषण के लिए जिम्मेवार थे। शूद्रों को

[7] कर्ण पर्व, 32–47.
[8] शान्ति पर्व, 60–21, 22.
[9] उद्योग पर्व, 132–30.

उपनयन आदि संस्कारों का अधिकार नहीं था और न ही उन्हें वैदिक अग्निहोत्र आदि कर्मों का अधिकार था। इस तरह समाज में उन्हें सबसे निम्न कोटि का दर्जा प्राप्त था।

सारांश– इस तरह प्राचीन भारत के इतिहास का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि महाभारत काल तक आते–आते वर्ण व्यवस्था की स्थिति में परिवर्तन आया और यह स्थिति वैदिक काल की अपेक्षा अधिक भेदभाव पूर्ण रूप में देखने को मिली। ऋग्वेद में चारों वर्णों का उल्लेख केवल पुरूष सूक्त में हुआ है। इसमें ब्राह्मण वर्ण को सबसे उपर रखा गया है। वैदिक युग में सभी वर्णों को बराबर का दर्जा प्राप्त था जो बाद में परिवर्तित हो गया। आगे चलकर वर्ण व्यवस्था जन्म व कर्म पर आधारित हो गई।

सन्दर्भ सूची–

1. सतीशचन्द्र काला, सिन्धु सभ्यता, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, 1955.
2. शिवदत्त ज्ञानी, वेदकालीन समाज , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणासी, 1967.
3. धर्मपाल अग्रवाल एवं पन्नालाल अग्रवाल, भारतीय पुरैतिहासिक पुरातत्व, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1975.
4. भरतलाल चतुर्वेदी, महाभारतकालीन समाज व्यवस्था, विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981.
5. द्विजेन्द्र नारायण झा, प्राचीन भारतः सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की पड़ताल, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2000.
6. डी.एन.झा, प्राचीन भारतः एक रूपरेखा, मनोहर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2005.
7. प्रशान्त गौरव, प्राचीन भारत, लगभग 600ई0 तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.
8. रणवीर चक्रवर्ती, भारतीय इतिहास का आदिकाल– प्राचीनतम पर्व से 600 ई0 तक, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2012.
9. गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतः इतिहास और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.